International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 7 Issue 12, December 2017
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

भारत में दलित उत्पीड़न और मानवाधिकार

दीपिका गुप्ता
शोध छात्रा (राजनीति विज्ञान)
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ0प्र0)
(जे0एल0एन0 कॉलेज) बाँदा

I(Abstract)

आधुनिक युग लोकतांत्रिक मूल्यों का युग है। जिसमें सभी को समान भागीदारी का अवसर प्रदान किया गया। वहीं दूसरी ओर मानवाधिकार के विभिन्न रूप चाहे वह भोजन, पानी, विकास, शुद्ध पर्यावरण, जीवन का अधिकार, राजनैतिक अधिकार, समानता पर आधारित अन्य अधिकार जो सभी प्राणियों के लिये जो पृथ्वी पर मानव होने के नाते उपस्थित हैं, प्रदान किये गये हैं। जिन्हें 10 दिसम्बर 1948 को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सार्वभौमिक रूप से स्वीकृति संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रदान की गई।

परन्तु 21वीं सदी में दलित वर्ग के अधिकारों की बात की जाये तो दलित उत्पीड़न किसी एक राज्य या किसी विशेष क्षेत्र में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत में विद्यमान छुआछूत, भेदभाव, जातिगत भावना, ऊँच–नीच विषमता पर आधारित मामले सर्वव्याप्त है। आज भी हमारे समाज में दलितों का शारीरिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक शोषण जारी है। ग्रामीण परिवेश में सबसे अधिक सवर्णों का अत्याचार दलित व निर्वल पर देखने को मिलता है तथा वे मानसिक प्रताड़ना का शिकार बनते हैं।

राष्ट्रीय अपराध रिकोर्ड ब्यूरो यानि एन0सी0आर0बी0 की रिपोर्ट–2014 जिसमें दलितों के खिलाफ 2013 के मुकाबले अधिक वृद्धि दिखाई गयी है। 2014 में 47,064 अपराध, 2013 में आंकड़ा 39,408, 2012 में 33,655, 2011 में 33,719 से थोड़े कम थे जबकि 2010 में यह आंकड़ा 33,712 था। यह आंकड़ा दलितों के अपराध में बढ़ोत्तरी दर्शाता है।

आजादी के 70 वर्ष व्यतीत होने के बाद भी आज आर्थिक असमानता की गहरी खाई है और मनोवैज्ञानिक रूप से सामाजिक हीनता से ग्रस्त है। उदाहरण के तौर पर– सवर्ण हिन्दुओं व दलित के खाने के बर्तन अलग–अलग होना, पीने के पानी के लिये अलग नल का प्रयोग करना जैसी बातें आम बनी हुयी हैं। जिनका प्रत्येक दिन उन्हें सामना करना पड़ता है।

यद्यपि 'दलित' शब्द की नींव अंग्रेजों द्वारा औपनिवेशक भारत में (1931 की जगगणना से पहले) की गयी थी। यह हिन्दू सामाज व्यवस्था के चौथी श्रेणी में वर्गीकृत जातिगत व्यवस्था है। भारत में दलित आन्दोलनकर्ता ज्योतिराव, गोविन्दराव फूले, बाबा साहब अम्बेडकर, केशवचन्द्र जैसे विचारकों ने निचले तबको के अधिकारों के लिये आवाज उठाई।

स्वाधीनता के बाद भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में जातिगत व्यवस्थाओं का खण्डन किया गया एवं कमजोर व वंचित समूहों को संवैधानिक भाषा में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति कहा गया एवं मौलिक अधिकारों अनु0 14, 15 (1) व 17 के माध्यम से दलितों के अधिकारों को संरक्षण प्रदान किया गया।

- संसद द्वारा अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिये नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955
- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989
- राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग की स्थापना 1992 में की गयी।
- 19 फरवरी 2004 से राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना की गई एवं कल्यार्णकारी योजनायें लागू हुयी।

विडम्बना है कि आज भी राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, उत्पीड़न दृष्टिगोचर होता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कानून के माध्यम से दलित वर्ग का सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक सुधार अवश्य हुआ है परन्तु यह संतोषजनक नहीं है। दलित उत्पीड़न को रोकने के लिये प्रत्येक वर्ग का शिक्षित, स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर होना परमावश्यक है। तभी कमजोर व निम्न वर्ग के लोग सशक्त हो पायेगें।

आधुनिक युग लोकतांत्रिक मूल्यों का युग है जिसमें सभी को भागीदारी का अवसर प्रदान किया गया। वहीं दूसरी ओर मानवाधिकार के विभिन्न रूप चाहे वह भोजन, पानी, विकास, शुद्ध पर्यावरण, जीवन का अधिकार, राजनैतिक अधिकार समानता पर आधारित अन्य अधिकार जो सभी प्राणियों के लिये जो पृथ्वी पर मानव होने के नाते अवतरित है।

असहनीय, यातना, क्रूरता, अमानवीय व्यवहार, जनसंहार, निम्न स्तर का व्यवहार, गुलामी, बंधुआ जैसी शब्दावली कहीं न कहीं उत्पीड़न से सरोकार रखती है जिसका सीधा सम्बन्ध बौद्धिक रचना के सर्वश्रेष्ठ मानव को जाता है जिसके विरोध में 'अधिकार' शब्द की उत्पत्ति होती है।

अधिकार सामाजिक जीवन के वे अवस्थाएं हैं जिनके बिना सामान्यतः कोई भी व्यक्ति अपने पूर्व विकास की उच्चता को नहीं पहुंच सकता।[1]

लास्की की यह परिभाषा अधिकारों की अपरिहार्यता को स्पष्ट करती है। व्यक्ति के चहुँमुखी व्यक्तित्व के विकास के लिये अधिकार अनिवार्य है।

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 7 Issue 12, December 2017
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

सभ्यता के विकास के साथ–साथ मानव में समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुयी। निरन्तर आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुये नित नये–नये आविष्कार करके मानव औद्योगिक युग में प्रवेश कर गया एवं विकास के नये अवसर प्राप्त हुये। परिणामस्वरूप मानव का शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक विकास हुआ।

राजनैतिक दृष्टिकोंण से भी अनेक राजवंशों द्वारा मानव समाज के उत्थान के लिये राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं अभिव्यक्ति की आजादी प्रदान की गयी। जनता को अपने अधिकारों व कर्तव्यों का बोध हुआ। शासक की शक्ति सीमित हुयी व आम जनता में अधिकारों की प्राप्ति की चेतना जागृत हुयी। इंग्लैण्ड का मैगनाकार्टा (1215), अमेरिकी स्वतन्त्रता का घोषणा पत्र (1776), रूस की वोल्सेविक क्रान्ति (1917), फ्रांस क्रान्ति ने मानवाधिकारों को नयी अवधारणा प्रदान की एवं सम्पूर्ण विश्व में स्वतन्त्रता, समानता एंव बन्धुत्व को महत्वता दी गयी। 10 दिसम्बर 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को लिखित रूप से मान्यता मिली। चार्टर की प्रस्तावना का सम्बोधन 'संयुक्त राष्ट्र संघ के लोग' से आरम्भ किया गया है। इन प्रारम्भिक शब्दों का अर्थ यह है कि चार्टर विश्व के लोगों की इच्छा की अभिव्यक्ति है।[2]

26 जनवरी 1950 में संविधान के लागू हो जाने के बाद प्रत्येक भारतवासी नागरिक के अधिकार एवं कर्तव्य सुनिश्चित किये गये। मानव अधिकारों को केन्द्र में रखकर संविधान द्वारा मौलिक अधिकार (अनु0 14–32) प्रत्येक व्यक्ति को जाति, धर्म, भाषा लिंग के भेदभाव के बगैर प्रदान किये गये। संवैधानिक व्यवस्था से सभी को स्व विकास का अवसर प्राप्त हुआ।

मौलिक अधिकार, नीति निदेशक तत्व एवं अन्य शासकीय प्रयासों से समाज के सभी वर्गो विशेषतः अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक वर्ग आदि के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक, धार्मिक उत्थान के लिये प्रयास किये गये। नीति निदेशक तत्वों, मानव अधिकारों को महत्वता देकर कमजोर व वंचित वर्गों को आर्थिक व सामाजिक सुविधाओं के माध्यम से लोकतांत्रिक व्यवस्था में वर्ग भेद के वगैर सभी को बराबर एक धारा में लाने का प्रयास किया गया। उपरोक्त प्रयास संवैधानिक सर्वोच्यता को प्रदर्शित करते हैं। परन्तु यदि आजादी के 70 वर्ष बाद भी व्यवहारिक रूप से मौलिक अधिकारों का अनुमोदन करें तो मौन नजर आ रहे हैं। ये अधिकार सबके लिये समान रूप से है परन्तु क्या समाज का प्रत्येक वर्ग इनका लाभ ले पा रहा है या कुछ उच्चवर्ग, सबल लोगों एवं प्रशासनिक व्यक्तियों के लिये है या इनका उचित संचालन नहीं हो पा रहा है या सिर्फ किताबों तक ही सीमित है इनका आम जनता कितना लाभ ले पा रही है? यह प्रश्न विचारणी है।

दलित :

21वीं सदी में यदि दलित शब्द की बात की जाती है कि दलित क्या है? कौन सी चीज ऐसी है जिससे व्यक्ति दलित बन जाता है क्या कोई व्यक्ति शारीरिक बनावट से दलित बन जाता है या उसकी आर्थिक, सामाजिक मानसिक मनोदशा दलित बनना तय करती है या फिर दलित ईश्वरीय रचना है। जबाब देना थोड़ा मुश्किल है।

परन्तु उपनाम, जातिगत–बटवारा, वणभेद व्यवस्था द्वारा समाज का बंटवारा करके दलित शब्द को सम्बोधित किया गया।

सर्वप्रथम दलित शब्द की नींव अंग्रेजों द्वारा औपनिवेशक भारत में (1931 की जगणना से पहले) की गयी।

दलित संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ दला हुआ, शोषित, पिछड़े पीड़ित कुचला, दबा हुआ है। कहीं–कहीं अस्पृश्य, वहिष्कृत या बाहरी जातियां कहा गया। गाँधी जी ने इन्हें 'हरिजन' अर्थात ईश्वर की संतान कहा। भारतीय संविधान द्वारा दलित शब्द को असंवैधानिक करार दिया गया व इसके स्थान पर अनुसूचित जाति व जनजाति शब्द का प्रयोग किया गया।[3]

भारत में दलित (सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्थिति) :

भारत में 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल जनसंख्या का 25.40 प्रतिशत लगभग (18 करोड़) अनुसूचित जातियों का है।[4] भारत में दलितों का उत्पीड़न शताब्दियों से चला आ रहा है। वहीं इनके संघर्ष का इतिहास तभी से जारी है। देश के लोगों का विभाजन चार जातियों क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र था। ईशा पूर्व छठी शताब्दी में गौतमबुद्ध व महावीर जी ने जाति व्यवस्था का विरोध किया। सामाजिक पिछड़ापन को दूर करने के लिये भक्ति कवियों एवं सूफी संतों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित की स्थिति को बयां किया। 19वीं व 20वीं शताब्दी में ज्योतिवा फुले, महात्मा गांधी और भीमराव अम्बेडकर जी ने दलितों के उत्थान के लिये संघर्ष किया। स्वतन्त्रता के बाद संवैधानिक प्रयास किये गये।

इसके बावजूद विडम्बना है कि भारत में विद्यमान छुआछूत, भेदभाव, जातिगत भावना, ऊँचनीच, विषमता पर आधारित मामले सर्वव्याप्त है। आज भी हमारे समाज में दलितों का शारीरिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक शोषण कायम है। ग्रामीण परिवेश में सबसे अधिक सवर्णों का अत्याचार दलित व निर्बल पर देखने को मिलता है तथा मानसिक प्रताड़ना का शिकार बनते हैं। जिसका अवलोकन हम प्रतिदिन अखबार टी0वी0 जैसे साधनों से करते हैं।

गृह मंत्रालय की तरफ से संसद में पेश आंकड़े बताते हैं कि 2015 में उत्तर प्रदेश में दलितों के खिलाफ ज्यादतियों के कुल 8946 मामले दर्ज किये गये। दूसरे नम्बर पर राजस्थान है। जहां 7144 मामले दर्ज हुये। इसके बाद विहार जहां 7121 मामले पुलिस ने दर्ज किये। चौथे नम्बर पर गुजरात है जहां 6655 मामले दर्ज हुयें। ऊँची जाति के लोगों को ये पसंद नहीं है कि दलित समुदाय आगे बढ़े। दलितों के मुद्दे पर उत्तर प्रदेश में सबसे ज्यादा राजनीति हो रही है।[5]

राष्ट्रीय अपराध रिकोर्ड ब्यूरो यानि एन0सी0आर0बी0 की रिपोर्ट 2014 जिसमें दलितों के खिलाफ 2013 के मुकावले अधिक वृद्धि दिखाई गयी है। 2014 में 47,046 अपराध 2013 में आंकड़ा 39,408, 2012 में 33,655 एवं 2011 में 33,7190 से थोड़े कम थे जबकि 2010 में यह आँकड़ा 33,712 था। यह आंकड़ा दलितों के अपराध में बढ़ोत्तरी दर्शाता है।[6]

उपरोक्त आँकड़े अपराधों की गम्भीरता को दर्शाते हैं। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में आज भी समाज का कुछ वर्ग न्याय की उम्मीद लगाये बैठा है। जातिगत भेदभाव से करोड़ों लोगों का सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक जीवन अस्त व्यस्त है। दलितों पर अत्याचार, मनमानी गिरफ्तारी मारपीट, सबल की निर्बल पर प्रताड़ना, बंधुआ मजदूरी आदि **उदाहरणस्वरूप**– जूतों की माला पहनाकर जुलूस निकालना, कालिक पोतना, गधे पर बैठाना, छोटे से अपराध के लिये निर्वस्त्र करके सड़कों पर घुमाना जैसे अपराधिक मामले भारत में आम बात है जो कि सरासर मानवाधिकारों का उल्लंधन है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के मुताबिक

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 7 Issue 12, December 2017
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

2015 में साढ़े 38 हजार से ज्यादा मामले, दलित उत्पीड़न के सामने आये। इनमें सबसे अधिक घटनाएं क्रमशः यूपी, बिहार, राजस्थान और मध्य प्रदेश में हुयीं दलितों के खिलाफ अपराध की सबसे ऊँची दर गोवा में है, 51 प्रतिशत। उसके बाद राजस्थान (48.4) और बिहार (38) की कुख्याति है। हर पन्द्रह मिनट में एक दलित हिंसा का शिकार व हर रोज दो दलितों की हत्या हो रही है। देश में हर दिन छह दलित महिलाओं से रेप की बारदात होती है। अन्य हिंसाएं जो हैं सो है।[7]

यद्यपि आरक्षण के प्रावधान से शैक्षिक स्थिति में सुधार तो अवश्य हुआ है परन्तु बहुसंख्यक लोग आज भी अशिक्षित हैं। विडम्बना है संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों, नीतिगत विधियों के बाद भी असंख्य दलित आज भी असहजता महसूस कर रहा है। अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ रहा है। स्वतन्त्र भारत में अब भी सामंतवादी व्यवस्था कायम है।

यद्यपि विदित रूप से समाजशास्त्रियों बौद्धिक वर्ग द्वारा विधि द्वारा प्रत्येक सरकार द्वारा दलित उत्थान की बात की गयी किन्तु रूढ़िवादी मानसिकता, सामन्तवादी विचारधारा के कारण कमजोर व वंचित वर्ग अपने अधिकारों से वंचित है जिसमें महिलाएं व बच्चे भी अछूते नहीं है। बन्धुआ मजदूरी, बाल श्रम, गुलाम बनाकर मजदूरी करना जैसी कुरीतियां सर्वत्र प्रचलन में है।

दलित उत्पीड़न और संवैधानिक प्रयास :

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में जातिगत वर्णभेद को पूर्णतः निषेद्य किया गया तथा कमजोर व वंचित समूहों को संवैधानिक भाषा में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति कहा गया एवं मौलिक अधिकारों अनु0 14, 15 (1) व 17 के माध्यम से दलितों के अधिकारों को संरक्षण प्रदान किया गया।

- संसद द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिये नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955
- राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग की स्थापना 1992 में की गयी।
- 19 फरवरी 2004 से राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना की गयी।[8]

इसके अतिरिक्त कल्याणकारी योजनाओं, कौशल विकास प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों के विकास, कल्याण, रोजगार व शैक्षिक अवसर प्रदान किये जा रहे हैं।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि कानून के माध्यम से दलित वर्ग का सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सुधार तो अवश्य हुआ है। परन्तु यह सन्तोषजनक नहीं है। दलित उत्पीड़न को रोकने के लिये प्रत्येक वर्ग का शिक्षित, स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर होना आवश्यक है। तभी कमजोर व वंचित वर्ग के लोग सशक्त हो पायेगें। दलित उत्पीड़न को रोकने के लिये कानून सशक्त होने के साथ–साथ सामाजिक जागरूकता भी आवश्यक है। अस्पृश्यता, सामाजिक भेदभाव निवारण के लिये संगोष्ठी, नाटक, गीत, चलचित्रों शिक्षा द्वारा ऐसा जनमत तैयार करना जिससे अस्पृश्यता जातिभेद, विषमता के हानिकारक परिणाम सामने आये। जन आन्दोलन द्वारा इन बुराईयों का अन्त किया जाये। संवैधानिक उपबन्धों को सम्मान मिले तथा भारत ऐसे लोक कल्याणकारी राज्य के रूप में उभरकर सामने आये। जिसमें सभी का कल्याण हो।

सर्वे भवन्तु सुखिना सर्वे भवन्तु निरामय।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा किश्चित दुख भाग भवेत।।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. यादव, डी0एस0. (2012). भारत के मानव अधिकार, जयपुर : आस्था प्रकाशन पृष्ठ 5
2. विसवाल, तपन. (2008). मानवाधिकार जेण्डर एवं पर्यावरण (प्रथम संस्करण), नई दिल्ली : Viva Books Private Limited पृष्ठ 79
3. भसीन, अनीस. (2013). जानिये मानव अधिकारों को नई दिल्ली : ग्रन्थ अकादमी पृष्ठ 77
4. भसीन, अनीस. (2013). जानिये मानव अधिकारों को नई दिल्ली : ग्रन्थ अकादमी पृष्ठ 77
5. दलितों पर अत्याचार के मामले में उत्तर प्रदेश है शीर्ष पर, हिमांशु शेखर मिश्र की रिपोर्ट 23 जुलाई 2016
6. क्यों बढ़ते जा रहे हैं दलित उत्पीडन gogleweblight.com
7. dw.com
8. भसीन, अनीस. (2013). जानिये मानव अधिकारों को नई दिल्ली : ग्रन्थ अकादमी पृष्ठ 52, 84